International Journal of Enhanced Research in Educational Development, ISSN: 2320-8708
Vol. 1 Issue 6, Sept.-Oct., 2013, pp: (76-81), Available online at: **www.erpublications.com**

संगीत और समाज हिन्दू धर्म के परिप्रेक्ष्य में

डॉ0 सोनिया बिन्द्रा

एसो0 प्रोफेसर (संगीत), एन0 के0 बी0 एम0 पी0 जी0 गर्ल्स कॉलेज, चन्दौसी जिला–सम्भल

मानव सृष्टि की अन्यतम रचना है, जो बुद्धि कौशल के बल पर सृष्टि के अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है। उसके नेत्रों–मिलन के साथ ही कंठ से ध्वनि निःसृत हुई। रूदल गान और शरीर की अन्य भंगिमाओं में भावाभक्ति होने लगी ध्वनि की स्थूल अंग की इस अविकसित प्रवृत्ति में ही संगीत की व्यापक परिभाषा अर्न्तनिहित है।

इस संगीत का अजस्त्र झरना प्राचीन काल से जनजीवनन में निःसृत होता रहा है। अतः यहां के संगीत में सरलता व रंजकता है। मानव के सम्पूर्ण जीवन पर (जन्म से मृत्यु तक) धर्म का सुदृढ़ आवरण होने के कारण यहां के संगीत में भी धर्म की महत्ता ही गाई बजायी जाती है। जिससे उसके स्वरूप में आध्यात्मिकता दृष्टिगोचर है। प्रातः काल दैनिक कर्म से निवृत्त होने पर प्रत्येक मानव अपने दिन का आरम्भ धार्मिक क्रिया–कलापों तथा भगवान की पूजा अर्चना से शुरू करता है तथा यह तथ्य उसके धार्मिक आध्यात्मिक विश्वास पर आधारित है। असंख्य लोग ईश्वर आस्था में गूढ़ विश्वासी होते है। इसीलिये संगीत का भी धर्म से जुड़ाव को नकारा नहीं जा सकता। क्योंकि आध्यात्म आत्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। ज्यों–ज्यों मानव का धर्म से विश्वास जुड़ता है, त्यों–त्यों उसके संगीत में आध्यात्मिकता का उन्मेश हुआ है। जिसके फलस्वरूप धार्मिक संगीत की उन्नति हुई।

संगीत का जन्म–

संगीत की सृष्टि कुछ दिनों, महिनों या वर्षो में नहीं हो गई, अपितु इसे परिपक्व होने में अनेक शताब्दियां लगी हैं। इतना अवश्य कहा जा सकता है, कि मानवीय जन्म के साथ ही इसका बीजारोपण हो गया होगा, तभी यह वैदिक काल तक आते–आते व्यवस्थित बन पाया है।

मानव ने भी जन्म लेते ही अपने आस–पास के प्राकृतिक प्रदत्त वस्तुओं का देखकर ही सर्वप्रथम इसमें संगीत को अनुभव किया होगा। जिस प्रकृति ने मानवीय संरचना को विकसित किया, उसी प्रकृति मां को गोद में उसके आयामों, स्थितियों, सुमधुर वातावरण, अनुशासित वस्तुओं को देखकर ही संगीत सृजित करने का भाव उसके अर्न्तमुखी मन से निःसन्देह उपजा होगा। ऐसी कल्पना निराधार नहीं हो सकती। उसके दैनिक जीवन में समाज में विचरण करते पक्षियों का कलरव, झरनों का झंकृत प्रवाह, बादलों का गर्जन, नदियों का अविरल कलकल, वर्षा की टिप–टिप, भंवरो की गुंजार, वायु की सनसनाहट इत्यादि में पर्याप्त संगीत का प्रवाह अनुभूत किया होगा। जिसे उसने अपनी चेष्टाओं, कुछ शारीरिक मुद्राओं से प्रकट भी किया जैसे अवसार अर्थात् दुःखी अवस्था में उसने अपने नेत्रों द्वारा आंसू, बहाये तथा आनन्दित होकर अनेक प्रकार की शारीरिक मुद्राओं से अभिव्यक्त भी किया भावनाओं की अभिव्यक्ति का यह प्रदर्शनकारी भाग ही उसे संगीत प्रेम को भी दर्शाता है।

जिस प्रकार उसने प्रेम प्रदर्शित करने हेतु मुंह से तरह–तरह की आवाजें निकाली, नेत्रों को इधर–उधर घुमाया, शरीर को हर्षातिरेक में हाथों के द्वारा बजाया (पीटना) शरीर की विभिन्न–भिन्न मुद्राओं में भंगिमायें बनाई ये सभी भाव उसके संगीतात्मक प्रदर्शन था। उसके मुख्य से निकली ध्वनि स्वर की परिचायक है। शरीर को वाद्य यंत्रों की यंत्रों की तरह पीटना, या बजाना, नाद्, वाद्य, लय की ओर संकेत करती है, और ब्रह्य रूप से शरीर

को तोड़ना–मोड़ना नृत्य की ओर इंगित करती है। इसी के साथ यह स्पष्ट हो जाता है, कि संगीत मनुष्य के जन्म के साथ ही उत्पन्न हो चुका है, और उसका सुव्यवस्थित रूप आज हमें देखने को मिलता है।

अतः स्पष्ट है कि मनुष्य में संगीत के गुण जन्मजात ही पाये गये हैं और उसकी नूतन कल्पनायें और आनन्द तथा सुख की खोज की प्रवृत्ति ही उसकी चेष्टा बन गई। अपने कार्यों को प्रकट करने के लिये उसने अभिव्यक्ति हेतु जो माध्यम अपनाया है, उनमें से एक संगीत भी है, और संगीत को अभिव्यक्ति करने का माध्यम नाद है।

नाद–

जिस प्रकार चेष्टा से नाट्य की उत्पत्ति तथा ध्वनि से भाषा की उत्पत्ति मानी गई, ठीक उसी प्रकार ना से संगीत की उत्पत्ति भी मानी गई है।

व्यक्ति द्वारा उत्पन्न नाद और उसके द्वारा की गई चेष्टा के अन्तर्गत जितनी भी कलायें आती हैं, वे सभी उसे न केवल आनन्द प्रदान करती है, बल्कि व्यक्तिगत दूषित प्रवृत्तियों, विसंगतियों से ऊपर उठाकर ब्रह्मानन्द के समान आनन्द रस की अनुभूति कराते हुये, मनुष्य को मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है।''

इस प्रकार संगीत में प्रयोग होने वाली ध्वनि ही नाद कहलाती है। दूसरे शब्दों में जो संगीत को सुनने समझने में सहायता दें वह ध्वनि साधारण भाषा में नाद कही जाती है। अन्य रूप में जो ध्वनि या आवाज कानों को सुनाई देती है, तथा जिसका सम्बन्ध स्वर से होता है, नाद कहलाती है। यें ध्वनि या नाद सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। प्राचीन संगीतज्ञों ने भी नाद की उत्पत्ति जीवन में तीन मूलभूत तत्वों द्वारा मानी है अर्थात प्राणा, वायु, अग्नि से ही नाद की उत्पत्ति मानी गयी है। ये तीनों तत्व मानवीय जीवन के भी आधार माने गये हैं। इन्हीं के आधार से ही नादक की उत्पत्ति को स्वीकार किया गया है। अर्थात् नाद इन तीनों (प्राण, वायु, अग्नि) तत्वों के संयोग या मिलने से उत्पन्न है।

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में नाद दो प्रकार माने गये–

1. अनाहत नाद
2. आहत नाद

अनाहत नाद–

अनाहत ना अनुभूत किया जा सकता है। जिसके उत्पन्न होने का कोई, ठोस कारण न हो, अर्थात् जो बिना घर्षण (वस्तुओं के आपस में टकराने से पहले) किये ही उत्पन्न हो जाये, उसे अनाहत नाद कहते हैं। इसे केवल महसूस किया जाता है, जिसका सम्बन्ध अलौकिकंता, अनाभिव्यक्ता तथा पराभौतिकता से है, अर्थात् साधारण रूप से अगर सांय की ध्वनि सुनाई देती है, वहीं ध्वनि अनाहत नाद कही जाती है। प्राचीन काल के ऋषि मुनि इस नाद की उपासना मुक्ति प्राप्त करने के लिये करते थे। ईश्वर से तारता स्थापित करने में यह नाद उनका सहयोगी था, ऐसा माना जाता है कि ये संगीतोपयोगी नाद नहीं है। ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करने में सहयोगी यह नाद मुक्तिदायक अवश्य बन गया है, ऐसा विश्वास किया जाता है।

आहत नाद–

जो ध्वनि कनों से सुनाई दे, और जो आवाज दो वस्तुओं के पारस्परिक रगड़ या टकराने से पैदा होती है व सुनने लायक ध्वनि आहत नाद कहलाती है। ये ना ही स्वर उत्पादक होता है। अर्थात् आहत नाद से संगीत में स्वरों की उत्पत्ति हुई है। आहत नाद को ही संगीत उपयोगी नाद कहा जाता है।

संगीत का आधारभूत तत्व नाद ही है। जिसके द्वारा संगीत को सुना (गायन) देखा (नृत्य) व बजाया (वाद्य) जाता है। ना का सम्बन्ध लौकिक, अलौकिक, भौतिक तथा पराभौतिक सभी सांसारिक व आध्यात्मिक वस्तुओं व भावनाओं से है। क्योंकि ईश्वर प्रदत्त प्रत्येक वस्तुओं में नाद की उपस्थिति स्वीकार की गई है। अतः ईश्वर के उपासक नाद की उपासना करते हैं। जिस प्रकार अपनी आत्मा से बड़ा कोई देवता नहीं है। ठीक उसी प्रकार नाद की पूजा से बढ़कर अन्य कोई बड़ी पूजा भी नहीं है। नाद को ब्रह्म की संज्ञा प्रदान की गई है।

योग में भी नाद अर्थात् संगीत का मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया है। क्योंकि शरीर में पांच तत्वों का समावेश माना गया है, अर्थात् हमारा शरीर प्राण, अग्नि, वायु, जल, आकाश से मिलकर ही बना है और मृत्युपरान्त इन्हीं पंचतत्वों में विलीन भी हो जाता है। दूसरे शब्दों में कहे तो मानव को ध्वनि उत्पन्न करने की इच्छा होती है, तो वह मन को प्रेरित करता है, और मन देह में स्थित अग्नि पर आघात करता है, जो वायु को प्रेरित करती है (क्योंकि दबाव से ही हवा में कंपन उत्पन्न होता है) तब (शरीर में स्थित) हमारे अन्य भागों पर वायु क्रम से ऊपर उठती है, और मुख में ध्वनि का अविर्भाव करती है ये मुख से निकली ध्वनि ही नाद कहलाती है।

इसीलिये जीवन में अन्तिम लक्ष्य में सहायक अर्थात् मोक्ष प्राप्ति में सहयोग नाद का परम परमेश्वर स्वयं भू भी माना गया है। जो अन्य प्राणियों के नाद को सुनकर हृइय में भय, रोष शोक आदि भावों का प्रतिपादन हो जाता है। उसका कारण नाद का आसमान होना है, अर्थात् ये नाद सम्पूर्ण धरातल पर कहीं ऊंचा है, तो कहीं नीचा, कहीं मुखरित है, तो कहीं शान्त, कहीं तीव्र है तो कहीं मन्द अनेकों रूपों मे सुनाई देता है।

कोमल, तीव्र, मध्यम, मन्द, कर्कश इत्यादि स्वरों की पहचान भी नादक के ही कारण सम्भव होती है। इस प्रकार कहा जाता सकता है, कि नाद सर्वत्र व्याप्त है तथा संगीत में स्वरबद्धता, लयबद्धता तथा नियमबद्धता इसी के द्वारा सम्भव होती है, तथा यही संगीत में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। इन्हीं मानवीय अभिव्यक्तियों को (हाव–भाव द्वारा नचाकर, विचारों को गेय रूप में गाकर, वाद्य को बजाकर अभिव्यक्त करने को ही) संगीत कहा जाता है।

विद्धान भी संगीत की उत्पत्ति धार्मिक मान्यताओं से जोड़ते हैं। भगवती, सरस्वती को विद्या और कला की देवी कहा गया है, और इनके हाथों में वीणा होने के कारण इन्हें संगीत की अधिष्ठात्री मना गया है। सभी संगीत की देवी सरस्वती जी की ही पूजा करते हैं। इसी क्रम में स्वरों का उतार–चढ़ाव की बांसुरी में निर्मित छेदों से लिया जाता है। सात स्वरों की उत्पत्ति भी कृष्ण का बांसुरी से मानी जाती है, और कृष्ण के हाथों की बंशी (सुषिर वाद्य) वाद्य की प्रतीक है। उसी प्रकार शंकर का डमरू भी (अवनद्ध) वाद्य की महत्त का घोतक है, और विष्णु जी के हाथ में शंक, सुषिर वाद्य को दर्शाता है।

सार तत्व है कि धर्म में जितने भी हम देवी देवताओं की पूजा अर्चना करते है। उन सभी में इन देवी देवताओं के हाथों में वाद्य का होना इनके संगीत प्रश्रय प्राप्त कर सका होगा।

अतः कहा जा सकता है कि संगीत की उत्पत्ति धार्मिक मान्यताओं से हुई है, अतः इसके स्वरूप को नकारा नहीं जा सकता।

भारतीय संगीत का सुव्यवस्थित रूप हमें सर्वप्रथम वेदों में देखने को मिलता है। सबसे प्राचीन वेद ऋग्वेद है। ऋग्वेद से सामवे तक आते–आते एक हजार वर्ष का समय लगा है। सामवेद में ऋचाओं का सस्वर गायन होता था। उस समय यह विश्वास था कि वे की ऋचायें जब सस्वर गाई जाती है, तो देवताओं तक मानव की प्रार्थना पहुंचाने में सुगमता होगी। सामवेद संगीतात्मक वेद है। जब इसकी ऋचाओं को गाया गया तो उसे ही सामगान कहा गया। क्योंकि इस काल में संगीत शब्द प्रचलित नहीं था। इसलिये गायक या वदक को उसे

सांगीतिक स्वरूपों के आधार पर कुछ उपनामों से सम्बोधित किया जाता था। भक्ति के या उपासना के जो भिन्न मार्ग वेदों में बताये गये, उन सब में संगीत सुगम, सरल एवं महत्वपूर्ण मार्ग है।

संगीत की व्युत्पत्ति–

कतिपय शब्द कोशों ने संगीत का अर्थ गाना तथा व्यवहार में संगीत हो लिया है– संगीत शब्द की व्युत्पत्ति सम् गै (गाना)+ कत है, अर्थात् गै धातु में 'सम' उपसर्ग लगाने से यह शब बनता है। 'गै' का अर्थ है, गाना और सम् (स) एक अव्यय, जिसका व्यवहार समानता संगति उत्कृष्ट निरन्तरता औचित्य आदि सूचित करने के लिये किया जाता है।'

तीन शब्दों से मिलकर बने संगीत में सम्पूर्ण स्वरात्मक वाद्यात्मक तथा नृत्यात्मक अभिव्यक्ति व संवेदनायें सम्मिलित है। जैसे–स + स्वर (जो कंठ से प्रथम ध्वनि निकली) गी+गीत (वो काव्यगत रचनायें जो स्वरबद्ध होती है) त+ ताल (वाद्यों द्वारा साथ संगत) अर्थात् स्वरबद्ध व तालबद्ध वह सुन्दर गीत जिसे गाया बजाया जाता है, संगीत की श्रेणी में आता है।

अन्य रूप में संगीत शब्द 'गीत' में सम् उपसर्ग लगाकर बना है। भली भांति गाने योग्य गीत ही संगीत है। संगीत के लिये उचित ही कहा है कि जब अभिव्यक्ति में शब्द असमर्थ हो जाते हैं, तो वहां संगीत का सहारा लिया जाता है।

पारिभाषिक स्वरूप–

वर्णित अर्था में गीत व वाद्य को ही महत्व दिया गया है। कई विद्वानों ने तो स्वरबद्ध गायन को ही संगीत की श्रेणी में रखा है तो कुछ विद्वानों ने वादन, गायन तथा उसमें अर्न्तनिहित क्रियाओं को संगीत की श्रेणी में माना है।

विद्वानों ने गायन, वान को ही संगीत माना है है। परन्तु संगीत की एक अन्य महत्वपूर्ण विधा नृत्य भी है। जिसकी परिणति की पुष्टि पं0 शारंगेव जी ने अपने ग्रन्थ में की है। उत्कृष्ट गायन, वादन तथा नृत्य तीनों को सम्मिलित करके संगीत की पूर्णता को बताया है।

जहां इन तीनों कलाओं की समाविष्टि है, वहीं संगीत है। अतः गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों की समाविष्ट ही संगीत है। इनके गाना प्रधान, वाद्य द्वितीय तथा तृतीय स्थान पर है।

जो गीत मन को आनन्द प्रदान करें वहीं संगीत के अन्तर्गत आता है। यही सुन्दर कर्णप्रिय संगीत जहां आत्मभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, वहीं दूसरों को मन्त्रमुग्ध करने की भी उसमें अदम्य शक्ति विद्यमान है।

गीत वाद्य तथा नृत्य को संगीत माना है।
कालिदास ने संगीतार्थ के उपादानों में गीत वाद्य तथा नृत्य तीनों की आवश्यकता निर्दिष्ट की है। कौटिल्य ने गीत वाद्य, नृत्य तथा नाटक का उल्लेख सहचरी कलाओं के रूप में किया है।

वाद्य तथा नृत्य को गीत का अनुवर्ती माना गया है, तथा नृत्यकला के सम्यक् अध्ययन के लिये गीत तथा वाद्यत का ज्ञान नितान्त आवश्यक अप्रेक्षित है।

संगीत चिन्तामणि के अनुसार संगीत एक व्यापक शब्द है। तीनों कलायें मिलकर ही संगीत की पूर्णता को सिद्ध करती है।

संगीत सार में संगीत मानवीय उत्कृष्ट भावनाओं की अभिव्यक्ति का सबल माध्यम है जो मानव के चंचल चित्त को आनन्द प्रदान करता है।

पं0 अहोबल ने भी गीत को प्रधान, वाद्य को द्वितीय तथा नृत्य को तृतीय स्थान पर माना है, तथा इन तीनों के समुच्चय को ही संगीत कहा है।

आधुनिक विद्वानों ने भी संगीत के अर्थ को स्पष्ट किया है, जहां ये तीनों कलायें मिलती है, वहीं संगीत पाया जाता है।

तीनों कलाओं का अपना–अपना स्वतन्त्र क्षेत्र है। इसमें गीत को प्रधान मानते हुये, अन्य दोनों कलाओं को इसमें शामिल किया जाता है, तभी संगीत की पूर्णता मानी गई है। अगर इनमें से एक भी अंग पृथक कर दिया जाये तो संगीत की परिभाषा भी अपूर्ण हो जायेगी। अतः तीनों कलाओं का संयोग व मिल नही संगीत की परिधि को पूर्ण करता है। इसीलिये इनमें निहित समूहगत विशेषता ही संगीता को पूर्णता प्रदान करती है।

स्पष्ट है कि तीनों विद्याओं, गायन, वादन तथा नृत्य का उत्कृष्ट प्रदर्शन ही मानव को परमानन्द की अनुभूति कराने में सक्षम है। इसी के द्वारा मनुष्य के जीवन में रसात्मकता की निष्पत्ति होती है। तथा उसकी पलायन वादिता भी नष्ट होती है। उसमें एकाग्रता व अनुशासनात्मकता का प्रवेश होता है।

संगीत के द्वारा ही ईश्वर से तादात्मय प्राप्त करने की चर्चा की जाती है। इसी कारण भारत की विशाल संस्कृति में पल्लवित विभिन्न धर्मों ने इसे अपनी परम्पराओं तथा रीति–रिवाजों के अनुसार अपनाया और व्यक्त किया है। प्राचीन इतिहास में संगीत को कहीं तो ईश्वर प्राप्ति का मार्ग माना है, तो कहीं उसे साक्षात् मोक्ष प्राप्ति का मार्ग। ये विश्वास है, कि ईश्वर उपासना हेतु एकाग्रता करने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम संगीत है। प्राचीन ग्रन्थों में ईश्वर के समीप जाने व उसके सान्निध्य प्राप्त करने के अनेक मार्ग बताये गये है। परन्तु उनमें से तीन प्रमुख मार्ग–ज्ञान मार्ग, कम मार्ग और उपासना मार्ग है। इन तीनों मार्गों में से उपासना मार्ग श्रेष्ठ व सहज है, जो ईश्वर के द्वार तका सीधा मुक्ति मार्ग है। इसी मार्ग से मन में सात्विक विचारों का आगमन होता है तथा चंचल वित्त को शान्त करने का प्रयास किया जाता है। अतः जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर तथा मस्तिष्क का कोई अस्तित्व नहीं है, ठीक उसी प्रकार बिना धर्म, अध्यात्म के मानव जीवन की कल्पना ही निरर्थक है, क्योंकि मानव के जीवन के भी धर्म से अलग करके नहीं देखा जो सकता। जिस तरह मानव विभिन्न धर्म, जातियों से जुड़ा होता है, उसी प्रकार संगीत के भी असंख्य प्रकार है।

संगीत परिवर्तनशील है, इसलिये देशकाल तथा परिस्थितियों के अनुकूल इसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते है। अतः इसी कारण इसमें नित नये–नये रूपों का सृजन होता रहता है। जैसे प्राचीन समय में सामगान, प्रबन्धगान आदि का अत्यधिक प्रचार था। बाद में ध्रुपद, धमार का प्रसार बढ़ा और मध्यकाल तका आते–आते ख्याल, ठुमरी, टप्पा, चतुरंग, कव्वाली इत्यादि गाने की प्रथाम का अत्यधिक प्रचार–प्रसार हो गया है। अतः संगीत निरन्तर प्रगतिशील व उन्नतिशील है, इसका आगे चलकर रूप अभी ओर निखरेगा तथा उन्नति के अभी ओर नित नये आयामों को इसे प्राप्त करना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. आचार्य बृहस्पति–सरयू कालेकर ''रामपुर की सदारंग परम्परा और प्रतिनिधि'' – पृ0 14
2. डॉ0 शच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास– पृष्ठ–9
3. डॉ शरचन्द्र श्रीधर पराजये संगीत बोध– पृ0– 1
4. वसुधा कुलकर्णी, पं0 शारंग देव, संगीत रत्नाकर– पृ0 ओंकार रूप सार्वभौम सत्ता को ही नाद ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान–, पृ0–9

6. गोविन्द राव राजुरकर, संगीत शास्त्र पराग पृ0–9
7. संगीत शास्त्र पराग– गोविन्द राव राजुरकर, पृ0–8
8. पं0 शारंग देव, संगीत रत्नाकार– सुजारकर टीका–प्रथम भाग, प्रथम अध्याय पिडोव्पत्ति, पृ0–23
ना नादेन बिना नृत्य तस्मान्नादात्मंक जगत्।
नादरूपः स्मृतो ब्रह्मा नादरूपो जनार्दनः।
नादरूपा पराशक्ति नादरूपों महेश्वरः।।
9. आचार्य क0च0 दे0 बृहस्पति संगीत चिंतामणि– भाग द्वितीय, पृ0– 16
नादमांक कर्ण्यमंयरोणशोकोदि प्रतिपद्यते
तदयं नांदाच्चित्रवृत्याद्यवग्रमोनुमा।।
10. डॉ शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे संगीत पत्रिका 1960, पृ0– 2–3 ऋचाओं में संगीत, अध्यात्म पाठक की अपेक्षा गायन से देवताओं को अधिक सहजता से वशीभूत किया जा सकता है।
11. सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल, मानक हिन्दी कोश– पृ0–313
12. डॉ0 लीलावती, उत्तर भारत में भक्ति परम्परा का इतिहास–, पृ0–11
13. रेनू सचदेव, धार्मिक परम्परायें एवं हिन्दुस्तानी संगीत पृ0–1 संगीत शब्द (गी) धातु में 'सम' उपसर्ग तथा वद्य प्रत्यय लगाकर बना है।
14. नाट्यशास्त्र भरतमुनि, यस्तु कात्येन नोक्त स्यात्तगीतने प्रसाधयत्। पृ0– 88
15. रेनू सचदेव, धार्मिक परम्परायें एवं हिन्दुस्तानी संगीत पृ0–7
16. नमिता बैनर्जी, मध्यकालीन संगीतज्ञ एवं उनका तत्कालीन समाज पर प्रभाव– पृ0–1
17. पं0 शारंग देव– संगीत रत्नाकर – तालाध्याय, पृ0– 5
गीत वाद्य तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।
18. नाट्यशास्त्र भरतमुनि अध्याय 20 पृ0– 11''गान्धर्व त्रिवे धे विद्यात स्वरताल पदान कम्।''
19. नारद संगीत मकरंद प्रथम पाठ श्लोक 311
20. आचार्य ब्रहस्पति– संगीत चिन्तामणि– पृ0–5 संगीत एक व्यापक शब्द है। गीत, वाद्य और नृत्य तीनों मिलकर संगीत कहलाते हैं, जिसमें गीत वादन और नृत्य तीनों मिलकर संगीत कहलाते हैं। जिसमें गीत प्रधान तत्व है, वाद्य उसका अनुकारक है, और नृत्य उपरंजक है।

डॉ0 सोनिया बिन्द्रा
एसो0 प्रोफेसर (संगीत) एन0 के0 बी0 एम0 पी0जी0 गर्ल्स कॉलेज, चन्दौसी जिला–सम्भल
Email- soniyabindrankbmg@gmail.com